Indian J. Soc. & Pol. 05(I):2018:113-114 Special Issue **ISSN : 2348-0084(PRINT)**
UGC List No. 47956 **ISSN: 2455-2127(ONLINE)**

आचार्य रामानुज के दर्शन में भक्ति का स्वरूप

सूर्य प्रकाश द्विवेदी[1a]
[a]शोधछात्र, दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद, उ0प्र0, भारत

ABSTRACT

आचार्य रामानुज के अनुसार भक्ति ईश्वर के प्रति मात्र प्रेम विषयक संवेग तथा श्रद्धा का भाव नही है जो ज्ञान शून्य है। बल्कि इसमें एक विशेष प्रकार का ज्ञान है जो मानवीय मन को ईश्वर के प्रति अत्यधिक आकर्षण का भाव पैदा करता है, जिससे वह ईश्वर का सतत् ध्यान एवं चिन्तन करता रहता है। इसलिए आचार्य रामानुज भक्ति को ध्यान एवं उपासना के तुल्य माना है। आचार्य रामानुज ने भक्ति को केवल पूजा पाठ, अथवा भजन किर्तन तक ही सीमित नही रखा है। बल्कि उन्होंने भक्ति को उपासना एवं सतत् ध्यान तक विस्तारित कर भक्ति में बौद्धिक पक्ष के महत्त्व पर भी बल दिया है। भक्ति का अर्थ बताते हुए आचार्य रामानुज ने श्री भाष्य में कहा है कि ईश्वर के स्वरूप का प्रेमपूर्ण सतत् चिन्तन ही भक्ति है।

KEYWORDS: *रामानुज, प्रेम, संवेग, दर्शन, भक्ति*

वास्तव में आचार्य रामानुज का भक्ति मार्ग ज्ञान कर्म समुच्चयवादी है।(उपाध्याय,1997पृ0399) अर्थात कर्म ही सहायता से उपलब्ध ज्ञानरूपी भक्ति को ही रामानुज ईश्वर साक्षात्कार का साधन मानते है। इस प्रकार कर्म एवं ज्ञान भक्ति के अंग है। कर्म को इसलिए भी आवश्यक माना गया है क्योंकि वेद विहित कर्म के अनुष्ठान से ही चित्त की शुद्धि होती है और शुद्ध चित्त में ही ज्ञान का उदय होता है। रामानुज भक्ति के पूर्व ज्ञान को आवश्यक मानते है क्योंकि ज्ञानयोग आत्म चिन्तन का सतत् अभ्यास है। इसके लिए किसी योग्य गुरू की सन्निधि आवश्यक है। गुरू के सानिध्य में वह शास्त्रो के अध्ययन से जीव के सच्चे स्वरूप को जानकर उसका ध्यान करता है। जिससे उसे यह ज्ञान होता है कि वह मन, बुद्धि, शरीर एवं इन्द्रिय आदि से भिन्न है तथा अध्यात्मिक प्रगति में ये किसी प्रकार बाधक बनते है इसका भी ज्ञान उसे हो जाता है। इस प्रकार जीव अपने वास्तविक स्वरुप को जान लेता है। उसे यह ज्ञान हो जाता है कि वह ईश्वर का अंश है परन्तु मात्र आत्मज्ञान ही मोक्ष नही है। रामानुज के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति ईश्वर की अनुकम्पा से ही होती है। ईश्वर की अनुकम्पा प्राप्त करने के लिए रामानुज भक्तियोग का विधान करते है जो ज्ञानयोग से आती है। ज्ञानयोग के फलस्वरूप ही ईश्वर के प्रति आस्था भाव दृढ़ होता है और वह दीर्घकाल तक ईश्वर का सतत् चिन्तन–मनन करता रहता है। इस प्रकार आचार्य रामानुज ज्ञान एवं कर्म की महत्ता को स्वीकार करते हुए एकमात्र भक्ति को ही ईश्वर साक्षात्कार का सर्वोत्कृष्ट साधन मानते है।

भक्ति का वर्णन करते हुए आचार्य रामानुज श्रीभाष्य में कहते है कि ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति का उदय जिन साधनों के द्वारा होता है, वे है– **विवेकविमोकाभ्यासक्रियाकल्याणानवसादानुद्धर्षेभ्यः** (रामानुजाचार्य,2000 पृ021) अर्थात विवेक, विमोक, अभ्यास, क्रिया, कल्याण, अनवसाद और अनुद्धर्ष आदि साधनों के द्वारा ही भक्ति का उदय होता है।

विवेकः– आचार्य रामानुज के अनुसार विवेक का अर्थ भोज्य (भोजन) संबंधित विचार है। उनके मतानुसार भोज्य वस्तुओं के अशुद्ध होने के तीन कारण है। पहला– जाति दोष अर्थात् भोज्य वस्तुओं का प्राकृतिक दोष जैसे लहसुन, प्याज आदि। दूसरा– आश्रय दोष अर्थात अपराधी एवं दुराचारी मनुष्य के हाथ से खाने में जो दोष है। तीसरा– निमित्त दोष अर्थात किसी अपवित्र वस्तु का जैसे धूल, बाल आदि के स्पर्श से होने वाला दोष आदि। इन उपरोक्त दोषों को दूर करके ही हमें भोज्य पदार्थों का ग्रहण करना चाहिए क्योंकि इससे चित्त शुद्ध होता है और शुद्ध चित्त में ही भक्ति भाव प्रस्फुटित होता है। आचार्य रामानुज श्रीभाष्य में लिखते है कि **'आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृति'**(वही) अर्थात आहार शुद्ध होने से चित्त शुद्ध होता है और शुद्ध चित्त में ही निरन्तर भगवान का स्मरण होता है।

विमोक– इसके अन्तर्गत साधक को चाहिए की वह अपनी समस्त इन्द्रियों को विषयों की ओर जाने से रोके तथा उनको अपने वश में करके अपनी इच्छा के अधीन रखे।

अभ्यास– अभ्यास के अन्तर्गत साधक को अपने मन की गति सदैव ईश्वर की ओर रखने का अभ्यास करना चाहिए। यद्यपि साधक के लिए यह प्रक्रिया कठिन है परन्तु उसके सतत् अभ्यास एवं परिश्रम से ऐसा सम्भव हो जाता है।

क्रिया– यहाँ क्रिया का अर्थ यज्ञ से लिया गया है। साधक को यथाशक्ति पंच महायज्ञों का अनुष्ठान नियमित रूप से करना चाहिए।

कल्याण– कल्याण का अर्थ यहाँ पवित्रता से लिया गया है। वाह्य शुद्धि और भोजन संबंधित शुद्धि विचार ये दोनों सरल कार्य है। परन्तु आन्तरिक शुद्धि के बिना इनका कोई मूल्य नहीं है। अतः आन्तरिक शुद्धि को अत्यन्त आवश्यक माना गया है। इस आन्तरिक शुद्धि के लिए आचार्य रामानुज ने निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक बताया है, वे है– सत्य, अहिंसा, सरलता, दान, दया, अर्थात निःस्वार्थ परोपकार अनभिध्या अर्थात पर द्रव्य में किसी भी

1: Corresponding Author

प्रकार से लोभ न करना तथा दूसरे के द्वारा किये गये अनिष्ट आचरण के निरन्तर चिन्तन का परित्याग आदि।

अनवसाद–देश और काल आदि कि विपरीत स्थिति तथा शोक आदि के कारणों की स्मृति से मन में उत्पन्न होने वाली दुर्बलता एवं अप्रसन्नता को अवसाद कहते है। इसकी विपरित स्थिति अर्थात अवसाद से रहित होना अनवसाद है।

अनुद्धर्ष– शास्त्रों में कहा गया है कि **नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः**(वही) अर्थात बलहीन व्यक्ति आत्मलाभ नही प्राप्त कर सकता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि शारीरिक एवं मानसिक कमजोरी (व्याधि) की स्थिति में साधक अवसाद ग्रस्त हो जाता है। इस अवसाद से होन वाले असंतोष को उद्धर्ष कहते है। अतः इसकी विपरित स्थिति को अनुद्धर्ष कहते है अर्थात शारीरिक एवं मानसिक रूप से समस्त व्याधियों से रहित होना अनुद्धर्ष है।

इन उपरोक्त साधनों द्वारा ईश्वर भक्ति का उदय होता है। रामानुज के अनुसार मोक्ष प्राप्ति का एकमात्र साधन है भक्तियोग। उनके अनुसार ज्ञानयोग या वेदान्त के कोरे ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति प्रायः असम्भव है। यदि ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती तो वेदान्त के सभी अध्येता मुक्त हो जाते परन्तु ऐसा नही है। मुक्ति के लिए आत्मज्ञान के साथ ईश्वरत्व ज्ञान भी अत्यन्त आवश्यक है और यह भक्ति योग से ही प्राप्त हो सकता है। भक्ति ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम है यह अनन्य प्रेम ईश्वर के स्वरूप का सतत् चिन्तन एवं ध्यान करना है।

आचार्य रामानुज के अनुसार भक्ति के दो प्रकार है पहला साधन भक्ति अथवा उपाय भक्ति तथा दूसरा पराभक्ति या परमभक्ति। साधन भक्ति या उपाय भक्ति मुख्यतः ज्ञान के स्वरूप से संबंधित है। जब मनुष्य आध्यात्मिक अनुभूति के लिए विकलता का अनुभव करता है तब वह आत्मावलोकन की दिशा में अग्रसर होता है। आत्मावलोकन की यह अवस्था भगवान के स्वरूप की जानकारी देने में सार्थक सिद्ध होता है। परन्तु इसके लिए साधक को शम दमादि आदि साधनों से मन को शुद्ध करना अत्यन्त आवश्यक माना गया है क्योंकि शुद्ध और एकाग्रचित्त में ही भक्ति का भाव उदय होता हैं इसे ही साधन भक्ति या उपाय भक्ति कहते है। जब साधक में अनन्य भक्ति का उदय होता है तब भगवान उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर उसके समस्त कर्म बन्धनों एवं क्लेशों का नाश कर देते है तब उसे ईश्वर साक्षात्कार होता है। यह भक्ति की परम उच्चतम अवस्था है इसे ही परमाभक्ति या परमभक्ति कहते है जो भगवान के अनुग्रह एवं कृपा से ही प्राप्त होती है।

आचार्य रामानुज प्रपत्ति एवं शरणागति को भी ईश्वर साक्षात्कार का साधन मानते है क्योंकि सभी मनुष्य भक्तिमार्ग के अधिकारी नही हो सकते है चूंकि समाज के कतिपय लोग ही शास्त्र अध्ययन के अधिकारी होते है। परिणामस्वरूप वे ही भक्ति मार्ग के अधिकारी है अतः भक्ति मार्ग की अपनी सीमाएँ है। जिसके कारण भक्ति की उपयोगिता घट जाती है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए आचार्य रामानुज ने प्रपत्ति एवं शरणागति को भी ईश्वर साक्षात्कार का साधन बताते है। जिसका अनुसरण कोई भी व्यक्ति कर सकता है। वह चाहे जिस वर्ण या जाति का हो तथा उसकी सामाजिक स्थिति चाहे जैसी भी हो। इस प्रकार प्रपत्ति एवं शरणागति भगवत्प्राप्ति का सर्व सुलभ, सरल एवं सुनिश्चित साधन है। गीता में भी भगवान कृष्ण ने कहा है कि– **सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।**

अर्थात समस्त धर्मों का परित्याग करके केवल मेरी शरण में आ जाओं मैं तुम्हें समस्त पापों से मुक्त कर दूगाँ।

इस प्रकार प्रपत्ति या शरणागति मोक्ष प्राप्ति का सबसे सरल एवं उपयुक्त साधन है। यह मार्ग सभी वर्ग के मनुष्यों के लिए सदैव खुला रहता है। प्रपत्ति का अर्थ है ईश्वर के प्रति अपने आप को सम्पूर्ण रूप से समर्पण कर देना। आचार्य रामानुज ने प्रपत्ति के छः अवयवों का वर्णन किया है, जो इस प्रकार है–

(1) ऐसे गुणों की प्राप्ति जो एक व्यक्ति को इस योग्य बना सके कि वह ईश्वर के प्रति उपयुक्त उपहार बन सके (अनुकल्यस्य सम्पत्तिः)।
(2) ऐसे आचरण का त्याग जो ईश्वर को स्वीकृत नही है (प्रतिकूल्यस्य वर्जनम्)।
(3) इस प्रकार का विश्वास कि ईश्वर उसकी रक्षा करेगा (रक्षिप्यतीति विश्वासः)।
(4) रक्षा के लिए आवेदन (गोप्तृत्व वरणम्)।
(5) अपनी तुच्छता का अनुभव (कार्पण्यम्)।
(6) नितान्त समर्पण (आत्मसमर्पणम्)। अन्तिम अवयव प्रपत्ति युक्त है यद्यपि अन्य उसके साधन है।(राधाकृष्णन,1996पृ0619)

प्रपत्ति भगवान के प्रति उत्कट प्रेम है। आचार्य रामानुज ने इसके साथ ध्रुवा स्मृति को भी जोड़ दिया है। यहाँ स्मृति का अर्थ उपासना एवं ध्यान से लिया गया है इस प्रकार ध्रुवा स्मृति का अर्थ है भगवान का निरन्तर ध्यान अर्थात भगवान का निरन्तर तैलधारावत अविच्छिन्न स्मरण ही ध्रुवा स्मृति है।(रामानुजाचार्य,2000 पृ017.18) इस भक्ति का चरमोत्मकर्ष ईशरत्व के साक्षात अनुभूति में होता है यही परा भक्ति की अवस्था है।

सन्दर्भ

उपाध्याय बलदेव (1997) *भारतीय दर्शन,* वाराणसी, शारदा मन्दिर,

श्री रामानुजाचार्य (2000) *श्रीभाष्य,* प्रथम खण्ड, सम्पादक– आचार्य श्री ललितकृष्ण गोस्वामी, दिल्ली, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

श्रीमद्भगवद्गीता 18/66 गीता प्रेस, गोरखपुर

राधाकृष्णन, डॉ0 एस0 (1996) *भारतीय दर्शन,* भाग–2 दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्स अनुवादक– नन्दकिशोर गोभिल